© 2017 IJSRSET | Volume 3 | Issue 6 | Print ISSN: 2395-1990 | Online ISSN : 2394-4099
Themed Section: Engineering and Technology

अभिज्ञानशाकुन्तलम् में वर्णित रस : एक विमर्श

राजेश कुमार
शोधच्छात्र, संस्कृत विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद।

अभिज्ञानशाकुन्तलम् नामक नाटक भारत का ही नहीं अपितु विश्व का सर्वश्रेष्ठ नाटकरत्न माना गया हे। इसमें कालिदास की नाट्यकला का चरम परिपाक है। भारतीय समालोचकों ने इसे संस्कृतनाट्यसाहित्य में सर्वश्रेष्ठ बतलाया है–

'काव्येषु नाटक रम्यं तत्र रम्या शकुन्तला'।

भारतीय ही नहीं अपितु पाश्चात्य विद्वान भी इस नाटकरत्न के द्वारा विमुग्ध हो गये हैं। नाटक के प्रारम्भ से लेकर अन्त तक इसमें नाट्यकला के दर्शन होते हैं। इसमें केवल नाट्यशास्त्रीय तत्त्वों का ही प्रस्तुतीकरण नहीं है अपितु नाट्यकला की भावभूमि पर हृदय के सरस भावों को अत्यन्त स्वाभाविकता, सरलता एवं मौलिकता के साथ प्रस्तुत किया गया है। कवि का सर्वाधिक कलाचातुर्य यह है कि उसने सर्वत्र औचित्य को ध्यान में रखकर किसी भी वृत्त को उसके मार्मिक भाव को उभारते हुए सहज रूप में प्रस्तुत कर दिया है जो कि बना किसी अन्तराय के सहृदयों के मानसान्तराल में सहसा ही प्रविष्ट होकर उन्हें प्रभावित किये बिना नहीं रहता है।

महाकवि कालिदास रससिद्ध कवि हैं। उन्होंने अपनी रचनाओं में सर्वत्र औचित्य का निर्वाह किया है। यही कारण है कि उनकी रचनाओं में कहीं भी रस का अपकर्ष नहीं हुआ है। रचनाओं में जहाँ औचित्य का सम्यक् निर्वाह होता है वहाँ रस का परिपाक होता है। कहा भी गया है–

''अनौचित्यादृते नान्यद् रसभंगस्य कारणम्।
प्रसिद्धौचित्यबन्धस्तु रसस्योपनिषत्परा।''

अर्थात् अनौचित्य के अतिरिक्त रस–भंग का अन्य कोई कारण नहीं होता है। काव्य में औचित्य का निर्वाही रस–परिपाक का करण होता हे।

कविकुलगुरु कालिदास ने सर्वत्र औचित्य का ध्यान रखते हुए अपनी कविता में रससंयोजन किया है। यह ढंग उन्होंने कविता के रसास्वादन के विघातक तत्त्वों में अपसारण के कारण अपनाया है। रसंयोजन–व्यापार में उन्होंने सर्वत्र स्वाभविकता को प्रश्रय दिया है। यही कारण है कि उनकी कविताकामिनी आदि से अन्त तक निरन्तर निर्बाध रूप से रसास्वादन कराती है। उसमें कहीं भी ऐसे कृत्रिम तत्व नहीं पाये जाते हैं जो कि पाठकों को रूखे–सूखे लगें तथा रसानुभूति में बाधा डाल सके, प्रत्युत उनकी कविता में सभी तत्त्व सरस, सजीव, स्वाभाविक एवम् आह्लादिक है, अतः रसानुभूति में सहायक सिद्ध होते हैं। अंगीरस के मध्य–मध्य जो रस आये हैं, वे स्वयं तो रोचक हैं ही साथ ही साथ प्रधान रस की परिपूर्णता में सहायक भी हैं।

रस काव्य का प्राणतत्त्व माना गया है। कविराज विश्वनाथ ने ःवाक्यं रसात्मकं काव्यम्' लिखकर रस की महत्ता पर प्रकाश डाला है। इस रस–व्यापार में सफलता के कारण ही कालिदास को कविता–वनिता का विलास बतलाया गया है। यहाँ रसराज श्रृंगार की कारणता को भी प्रश्रय देना पड़ेगा।

महाकवि कालिदास श्रृंगार रस के सरस कवि हैं। उन्होंने अपने काव्यों में प्रायः ललित श्रृंगार रस की ही व्यंजना की है। यद्यपि वे श्रृंगार रस के प्रतिष्ठित कविरत्न हैं; तथापि उन्होंने करुण, वीर, अद्भुत, भयानक, वात्सल्य तथा हास्य रस की उपेक्षा नहीं की है। कवि ने अभिज्ञानशाकुन्तल में श्रृंगार रस के दोनों पक्षों की कलात्मक ढंग से अभिव्यक्ति की है। इस संदर्भ में भी उन्होंने औचित्य का पूर्णतया ध्यान रखा है। यदि केवल श्रृंगार रस के वियोग पक्ष को रखा जाता तो पाठक श्रृंगार रस के रूखे–सूखे तथा मिठासरहित भावों की ही अनुभूति कर सकते। उन्हें सरस सुस्वादु, मधुर भावों की जिज्ञासा ही बनी रहती है जो कि उस पक्ष में पूर्ण होनी संभव न थी और यदि केवल संयोगपक्ष को रखा जाता तो वह स्वाद नहीं आता जो कि नमकीन पदार्थों को खाने के बाद मीठे पदाथों को खाने से आता है। रूखे–सूखे खाने के पश्चात् सुस्वादु मधुर व्यंजनों से आनन्द आता है। इसी को लक्ष्य करके कविराज विश्वनाथ लिखते हैं–

''न विना विप्रलम्भेन सम्भोगः पुष्टिमश्नुते।

कषायिते हि वस्त्रादौ भूयान् रागो विवर्धते।।''

अर्थात् बिना विप्रलम्भ (वियोग) श्रृंगार के सम्भोग (संयोग) श्रृंगार पुष्टि को नहीं प्राप्त करता है। वियोग के पश्चात् ही संयोग सुस्वादु लगता है। कषैले वस्त्रादि पर ही गहरा रंग अधिक चढ़ता है। इसी प्रकार किसी सूखे मानस में स्नेह अधिक चढ़ता है।

राजा दुष्यन्त शुकन्तला के लावण्य पर विमुन्ध होकर उसे पुष्पित लता के रूप में देखता है। वह कहता है इस शकुन्तला का अधरोष्ठ किसलय के समान लाल है। दोनों हाथ दो कोमल शाखाओं को अनुकरण करने वाले हैं। पुष्प के समान मनोहर लगने वाला यौवन इस शुकन्तला के सभी अवयवों में अभिव्याप्त है।[1]
वह अप्रतिम सुन्दर शकुन्तला को मन से पत्नी के रूप में स्वीकार कर लेता हे। अतः भ्रमर के द्वारा शकुन्तला के अधरोष्ठ का स्पर्श उसे सह्य नहीं होता है।[2]

तपःपूत आश्रम में निवास करने वाली भोली–भाली शकुन्तला भी महाराज दुष्यन्त को देखकर उनके असाधारण सौन्दर्य से आकृष्ट हो जाती है और अपने मनोगत भावों के विषय में मन ही मन विचार करने लगती है–

'किं न खल्विमं जनं प्रेक्ष्य तपोवनविरोधिने विकारस्य गमनीयास्मि संवृत्ता।'

द्वितीय अंक में नायक दुष्यन्त शुकन्तला की हाव–भाव पूर्ण चेष्टाओं को स्मरण करता है और कामी पुरुष के समान उन्हें अपने ही पक्ष में लेता है।[3]

वह शुकन्तला को विलक्षण तथा अलौकिक सुन्दरी मानता है तथा उसकी प्राप्ति में संदिग्धचित्त है। अतएव उसे लक्ष्य कर कहता है। उसका निष्कलंक सौन्दर्य किसी के द्वारा न सूँघे गये फूल के समान, नाखूनों से न छेदे गये किसलय के समान न बीघे गये रत्न के समान, जिसके रस का अभी तक आस्वादन नहीं किया गया है ऐसे ताजे मधु के समान और पुष्पों से अखण्डित फल के समान है। न जाने विधाता किसे उसको भोगने वाला बनायेगा।[4]

दुष्यन्त भी शकुन्तला से मिलने के लिए अधीर हो उठता है, वह कहता है–हे भीरु! जिस दुष्यन्त से तू तिरस्कार की आशंका कर रही है, वह यह दुष्यन्त तुझसे मिलने के लिए उत्सुक खड़ा है। चाहने वाले को भले ही लक्ष्मी मिले या न मिलें, परन्तु जिसे स्वयं लक्ष्मी चाहे, वह उसके लिए कैसे दुर्लभ हो सकता है? वह तो उसे अवश्य ही मिलेगा।[5]

उपर्युक्त उद्धरणों के अनुशीलन से यह ज्ञात होता है कि महाकवि कालिदासस श्रृंगार के उभयपक्षों (संयोग एवं वियोग) के चित्रण में पूर्ण सफल हुए है। सफलता की दृष्टि से दोनों ही पक्ष अपनी–अपनी पहल कर रहे हैं। कवि ने वियोग पक्ष के द्वारा संयोग पक्ष की पुष्टि की है। उपर्युक्त तथ्यों के विश्लेषण से यह स्पष्ट हो जाता है कि कालिदास को श्रृंगार रस के परिपोष में सर्वाधिक सफलता मिली है। अभिज्ञानशाकुन्तलम् तो उसका केन्द्र बिन्दु ही बन गया है। इस प्रकार के श्रृंगार का चित्रण अन्यत्र नहीं हुआ है। कवि की कविताकामिनी श्रृंगार के ललित–भावों से विलसित हो उठी है।

हास्यरस–

अभिज्ञानशाकुन्तलम् में हास्य–रस का भी सफल प्रयोग हुआ है जिससे कवि की कविता–वनिता मुस्कराती हुई सी दृष्टिगत होती है। वह अपनी मन्द मुसकान मिठाई के द्वारा पाठकों के मन को हठात् अपनी ओर आकृष्ट कर लेती हे। शाकुन्तल में शिष्ट एवं परिष्कृत हास्य का सुन्दर समन्वय मिलता है। हास्यरस को परिपुष्ट करने का श्रेय विदूषक को है। वह स्थान–स्थान पर अपने विचित्र वाक्य–विन्यासों के द्वारा हंसी के फब्बारों को छुड़वा देता है। प्रियंवदा भी परिहास कुशल है। कहीं–कहीं पर वह मीठी सी चुटकी लेकर लोगों को हँसा देती है। जब शुकन्तला अनसूया से प्रियंवदा की शिकायत करती है कि उसने उसकी चोली कसकर बांध दी है तो प्रियंवदा उत्तर देती है कि तुम अपने यौवन को उलाहना दो जिसने तुम्हारे कुचों को इतना बढ़ा दिया है। मेरी शिकायत से क्या लाभ?

षष्ठ अंक में महाराज दुष्यन्त जब यह कहते हैं कि कामदेव आम्रमंजरी रूपी बाण के द्वारा मेरे ऊपर प्रहार कर रहा है तो विदूषक डंडा उठाकर कहता है कि इस काठ के डंडे से काम के रोग को नष्ट किये देता हूँ।[6]

करूण–

अभिज्ञानशाकुन्तल में हमें करुण रस के भी दर्शन होते हैं। चतुर्थ अंक में विदावेला के समय करुणा का वातावरण छा जाता है। धीर एवं संयत कण्व जैसे महर्षि भी अपार करुणासागर में निमग्र हो जाते हैं। जिस समय शकुन्तला कहती है पिताजी आपका शरीर कठिन तपस्या के कारण कृश है, अतः आप मेरे लिए अधिक व्याकुल न होवें। ऐसा सुनकर गहरी एवं लम्बी सांस लेकर कण्व कहते हैं कि हे पुत्र! तुम्हारे द्वारा पहले पूजा के रूप में डाले गये और अब कुटी के द्वार पर उगे हुए नीवारों को देखते हुए मेरा यह शोक (दुःख) कैसे शान्त होगा? अर्थात् यह शोक तो किसी भी प्रकार शान्त नहीं हो सकता है।[7]

इस प्रकार विलाप करते हुए कण्व कह ही देते हें– 'गच्छ शिवास्ते सन्तुःपन्थानः।'

करुण विप्रलम्भ–

पंचम अंक में दुष्यन्त के द्वारा परित्यक्ता शकुन्तला विलाप करती हुई वहाँ से जाती है। वह कहती है–'भगवति वसुधे! देहि में विवरम्' शकुन्तला के इस दृश्य में करुण विप्रलम्भ की स्थिति है।

वात्सल्य विप्रलम्भ–

अभिज्ञानशाकुन्तल के चतुर्थ अंक में विदाई वेला के प्रसंग में कुछ विद्वानों ने करुण रस की स्थिति मानी है। जैसा कि करुण रस प्रसंग में बतलाया जा चुका है। परन्तु शास्त्रीय दृष्टि से कुछ विद्वानों को आपत्ति है। उनका अभिमत है कि करुण रस का स्थायीभाव शोक है जैसा कि कहा गया है–

:इष्टनाशानिष्टाप्तेः करुणाख्यो रसो भवेत्।

शोकोऽत्र स्थायिभावः स्याच्छोच्यमालम्बनं मतम्।।'

रौद्र रस–

स्पष्ट रूप से रौद्र रस के दर्शन नहीं होते हैं। क्रोध भाव तथा आक्रोश भाव के प्रसंग आये हैं। क्रुद्ध दुर्वासा शकुन्तला को शाप देते हैं। राजा के द्वारा तिरस्कृत शकुन्तला आक्रोश–भाव प्रकट करती है। राजा तथा कण्व शिष्य के वार्लालाप के प्रसंग में भी क्रोध का भाव आ जाता है।

वीर रस–

अभिज्ञानशाकुन्तल में वीर रस का वर्णन न्यून मात्रा में हुआ है। राजा के शौर्य की प्रशंसा की गयी है

'का कथा बाणसंधाने ज्याशब्देनैव दूरतः।

हुँकारेणेव धनुषः स हि विध्नानपोहति।।''

अद्भुत रस–

शाकुन्तल के कतिपय स्थलों पर अद्भुत रस के दर्शन होते हैं। चतुर्थ अंक में आकाशवाणी के द्वारा महर्षि कण्व को शकुन्तला–परिणय का ज्ञान होना तथा विदाई के समय वृक्षों के द्वारा वस्त्राभूषणादि प्रदान करना। पंचम अंक में मेनका द्वारा शकुन्तला के अपहरण आदि वृत्तान्त अद्भुत रस की सृष्टि कर देते हैं।

भयानक रस–

कुछ स्थलों पर भयानक रस के दर्शन होते हैं। प्रथम अंक के प्रारम्भ में भयाकुल मृग के भागने का वर्णन (ग्रीवाभंग.....) अंक की समाप्ति पर रथ को देखकर भयाकुल हाथी के आश्रम–प्रवेश (तीव्राघातप्रतिहत....) तृतीय अंक में भयानक राक्षसों का आश्रम में आगमन (सायन्तने सवनकर्मणि.....) इस प्रसंगों में भयानक रस की अनुभूति होती है।

शान्त रस–

शाकुन्तल के सप्तम अंक में मारीच ऋषि के आश्रम में शान्त रस की स्थिति पायी जाती है। राजा दुष्यन्त को वहाँ का शान्त वातावरण अपनी ओर आकृष्ट कर लेता है। वह उस आश्रम को स्वर्ग से भी अधिक महत्व देता है और कहता है कि मैं मानो सुवाससरोवर में स्नान कर रहा हूँ। वह ऋषियों की तपस्या की प्रशंसा करता है। शान्त, दान्त महर्षि मारीच की प्रशंसा करता हुआ वह तृप्ति का अनुभव नहीं करता है।

वात्सल्य रस–

अन्य रसों के साथ ही साथ शाकुन्तल में वात्सल्य की भी सुन्दर व्यंजना हुई है। राजा दुष्यन्त सर्वदमन को देखकर उसको प्यार करने के लिए लालायित हो उठता है। वह बालक को गोद में बैठाकर खिलाने को सौभाग्य समझता है।[8]

वह सर्वदमन के अंगों का स्पर्श कर परम आहलाद की अनुभूति करता है वह कहता है कि किसी भी वंश के अंकुरस्वरूप इस बालक के स्पर्श होने पर मेरे अंगों में इस प्रकार का सुख हो रहा है तो जिस पुण्यात्मा की गोद से यह उत्पन्न हुआ है। उसके हृदय में कैसा अपूर्व आनन्द करता होगा।[9]

उपर्युक्त रस, प्रधान का साक्षात् या परम्परया उपकारक है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि महाकवि कालिदास को रसों के प्रयोग में अत्यन्त सफलता मिली है।

अनुक्रमणिका

1. ''अधरः किसलयरागः कोमलविटपानुकारिणी बाहू।
   कुसुममिव लोभनीयं यौवनमगेंपुरासन्नद्धम्।। अभि0 1/21
2. ''चलापांगां दृष्टि स्पृशसि बहुशो वेपथुमतीम्
   रहस्याख्यायी स्वनसि मृदु, कर्णान्तिकचरः।
   करौ व्याधुन्वत्याः पिबसि रतिसर्वस्वमधरं
   वयं तत्त्वान्वेषान्मधुकर हतास्त्वं खलु कृती।।''
3. स्त्रिग्धं वीक्षितमन्यतोऽपि नयने यत्प्रेषयन्त्या तया,
   यातं यच्च नितम्बयोर्गुरुतया मन्दं विलासादिव।
   मा गा इत्युपरुद्धया यदपि सा सासूयमुक्ता सखी,
   सर्व तत्किल मत्परायणमहो कामी रक्तां पश्यति।। अभि0 2/2
4. अनाधातं पुष्पं किसलयमलूनं कररुहै–
   रनाविद्धं रत्नं मधु नवमनास्वादितरसम्
   अखण्ड पुण्यानां फलमिव च तद्रूपमनघं
   न जाने भोक्तारं कमिह समुपस्थास्यति विधिः।। अभि0 2/11
   स्त्रजमपि शिरस्यन्धः क्षिप्तां धुनोत्यहिशंकया।। अभि0 7/24
5. अभि0 3/11
6. तिष्ठ तावत्! अनेन दण्डकाष्ठेन कन्दर्पव्याधि नाशयिष्यामि।
7. अभि0 4/21
8. अभि0 7/17
9. अभि0 7/19